6438

कैलाससागर सूरि ज्ञान
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र,

तित्थयर

जनवरी १९९३
बीइस वर्ष : नवम अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक ६

जनवरी १९९३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

पाहुडसुत्तों की दशाधिक टीकाएं	२५६
प्राकृत और संस्कृत : समानान्तर भाषाएं	२६४
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२७२
संकलन	२८५
जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	२८६

सहस्रफणा पार्श्वनाथ, राणकपुर

पाहुडसुत्तों की दशाधिक टीकाएँ

डॉ० महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

पाहुड-ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख रचनाएँ हैं। दंसण, सुत्त, चरित्त, बोह, भाव, मोक्ख, लिंग और सील इन आठ पाहुडों को 'अष्टप्राभृत' तथा आदि के छह पाहुडों को 'षट् प्राभृत' नाम दिया गया। इन्हीं नामों से ये प्रकाशित हुए हैं।

अष्टपाहुड के अब तक प्रकाशित संस्करणों के सम्पादन में प्राचीन पाण्डुलिपियों का उपयोग प्रायः नगण्य हुआ है। इसलिए प्रायः प्रत्येक संस्करण के मूल प्राकृतपाठ में भिन्नता है। पाठ-भिन्नता के कारण अष्टपाहुड के विशिष्ट अध्ययन में काफी असुविधाएँ हुई हैं। इन्हीं को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिसर्च एशोसिएट योजना के अन्तर्गत सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राकृत एवं जैनागम विभाग में मैंने अष्टपाहुड के सम्पादन का कार्य आरम्भ किया है। अभी तक के अनुसन्धान से मुझे अष्टपाहुड की २६८ पाण्डुलिपियों की जानकारी मिली है।

देश-विदेश के विभिन्न शास्त्र-भंडारों में अष्टपाहुड की दर्शनप्राभृत (दंसणपाहुड), चारित्रप्राभृत (चरित्तपाहुड), भावप्राभृत, भावनाप्राभृत (भावपाहुड), मोक्षप्राभृत (मोक्खपाहुड), लिंगपाहुड, सीलपाहुड, षट्प्राभृत (षट्पाहुड) और अष्टप्राभृत आदि नामों से पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

आचार्य अतमृचन्द्र कुन्दकुन्दकृत ग्रन्थों के आद्य एवं प्रमुख टीकाकार हैं। दूसरे प्रमुख टीकाकार आचार्य जयसेन हैं। उक्त दोनों आचार्यों की समयपाहुड, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय पर टीकाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु कुन्दकुन्द की नियमसार और अष्टपाहुड जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं पर इन आचार्यों की टीकाएँ प्राप्त न होना विचारणीय है।

षट्पाहुड पर श्रुतसागरसूरि की संस्कृत टीका तथा अष्टपाहुड पर पण्डित जयचन्द छावड़ा की ढूढारी भाषावचनिका ये दो टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं। अनुसन्धान के क्रम में विभिन्न शास्त्रभण्डारों, प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थ-सूचियों आदि के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि अष्टपाहुड पर कन्नड़, संस्कृत, ढूढारी, हिन्दी आदि भाषाओं में विभिन्न आचार्यों तथा विद्वानों ने अनेक टीकाएँ तथा पद्यानुवाद किए हैं। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार पाहुडों पर तीन प्राकृत टीकाएँ, चार संस्कृत टीकाएँ, चार हिन्दी-ढूढारी टीकाएँ

और पद्यानुवाद किए गये हैं। कन्नड़ टीकाएँ बालचन्द, कनकचन्द और एक अज्ञात टीकाकार की हैं। संस्कृत टीकाएँ प्रभाचन्द्र महापण्डित, प्रभाचन्द्र, श्रुतसागर सूरि और एक अज्ञात विद्वान की हैं। ढूढारी-हिन्दी टीकाएँ और पद्यानुवाद भूधर, देवीसिंह छावड़ा, पं० जयचन्द छावड़ा और एक अज्ञात् रचयिता द्वारा किये जाने के उल्लेख है।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन की सूचना के अनुसार १३वीं शताब्दी में बालचन्द ने मोक्षपाहुड पर कन्नड़ टीका लिखी है।[१] इसके अतिरिक्त इन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय और नियमसार पर कन्नड़ टीकाएँ लिखीं हैं। तत्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह और परमात्मप्रकाश पर भी इनके द्वारा कन्नड़ टीकाएँ रचे जाने की सूचनाएँ प्राप्त हैं।[२] मोक्षपाहुड पर बालचन्द-कृत कन्नड़ टीका की एक ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि के जैनमठ, मूडविद्री में उपलब्ध होने की सूचना है। इसकी पत्रसंख्या १२ व ग्रन्थांक ७५८ है।[३] मोक्षपाहुड पर ही १३वीं शताब्दी में कनकचन्द ने कन्नड़ टीका लिखी है।[४] इनके विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती।

आरा के जैना सिद्धान्त भवनमें पाहुडों की कन्नड़ भाषा में तीन ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं। दो मोक्षपाहुड एवं एक षट्प्राभृत नाम से है। मोक्षप्राभृत के पत्र १७ और १८ तथा ग्रन्थांक १०२८ और १०२९ हैं। षट्प्राभृत के पत्र ४० तथा ग्रन्थांक १३५७ है। १०२८ नं० की पाण्डुलिपि मोक्षप्राभृत की है। इसकी लिपि कन्नड़ है। इसमें मूल प्राकृत-गाथाओं की संक्षिप्त टीका भी है। टीका की भाषा कन्नड़ है। प्रति जीर्ण है। पत्र टूट रहे है। इसका परीक्षण कर लिया गया है।

षट्पाहुड पर एक अन्य टीका की सूचना हमें भट्टारक यशःकीर्ति सरस्वती

---

१ जैना आथर्स एण्ड देअर वर्क्स, जैना एण्टीक्वैरी, भाग ३७, नं. २, पृष्ठ १४ एवं परमात्मप्रकाश-प्रस्तावना—डॉ. ए. एन. उपाध्ये।

२ वही।

३ कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थसूची, पृष्ठ-१७।

४ कतिपय (दि०) जैन संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों पर प्राचीन कन्नड़ टीकाएँ—पं. के. भुजबली शास्त्री, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग-२, किरण-३, दिसम्बर १९३५, पृष्ठ-११२। जैना आथर्स एण्ड देअर वर्क्स—डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, जैना एण्टीक्वैरी, भाग ३७, नं. २, पृष्ठ १४।

भण्डार ऋषभदेव के प्रकाशित सूचीपत्र से प्राप्त हुई।[५] इस सूची में षट्पाहुड की दो पाण्डुलिपियों का विवरण है। एक प्रति के विवरण में टीकाकार के कॉलम में "टी देवी" तथा भाषा के कॉलम में "प्राकृत टी" लिखा है। टी देवी के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। सम्भव है पाण्डुलिपि में कुछ विवरण सुरक्षित हो।

प्रभाचन्द्र महापण्डित ने अष्टपाहुड की 'पंजिका' नाम से संस्कृत टीका लिखी है। डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ने इनका समय सम्बत् १०१०-१०६० सूचित किया है।[६] इन्होंने इन्हें "प्रभाचन्द्र महापण्डित ऑफ धारा" लिखा है। इस सूचना के अनुसार प्रभाचन्द्र महापण्डित ने प्रवचनसार पर 'प्रवचनसार सरोज भास्कर', पञ्चास्तिकाय पर 'पञ्चास्तिकाय प्रदीप' और समयसार तथा मूलाचार पर भी टीकाएँ लिखी हैं। अष्टपाहुड पर एक संस्कृत टीका प्रभाचन्द्र महापण्डित से भिन्न प्रभाचन्द्र ने की है। इनका समय १२७० से १३२० ई० है। इन्होंने समयसार, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय पर भी टीकाएँ रची हैं।[७] विक्रम की १६वीं शताब्दी के आचार्य श्रुतिसागरसूरि ने अष्टपाहुड के दंसण, सुत्त, चरित्त, बोह, भाव और मोक्खपाहुड पर पद-खण्डान्वयी संस्कृत टीका लिखी है। यह टीका प्रकाशित हो चुकी है।[८] श्रुतसागरसूरि ने कुल ३८ रचनाएँ की हैं। ये टीकाग्रन्थ, कथाग्रन्थ, व्याकरण और काव्यग्रन्थ हैं।

षट्पाहुड पर एक अन्य संक्षिप्त संस्कृत टीका प्राप्त हुई है। इससे मात्र गाथार्थ स्पष्ट होता है। इस टीका की अनेक पाण्डुलिपियाँ भारत और विदेशों में भी मौजूद हैं। इसकी २० पाण्डुलिपियों की जानकारी है। ये प्रतियाँ जयपुर, महावीरजी, अहमदाबाद, ईडर, ब्यावर, चाँदखेड़ी, बम्बई,

---

५ हस्तलिखित शास्त्रों का परिचय, पृष्ठ १८, प्रकाशक पं० रामचन्द्र जैन, ट्रस्टमंत्री ऋषभदेव।

६ जैना आथर्स एण्ड देअर वर्क्स—जैना एण्टीक्वेरी, भाग ३१, नं. २, पृ. ११।

७ वही, भाग ३४, नं. २, पृष्ठ ४६।

८ षट्प्राभृतादिसंग्रहः, माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, वी. नि. सं. २४४७। अष्टपाहुड, शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, महावीरजी, वी. नि. सं. २४९४।

इन्दौर, सागर और स्ट्रासवर्ग (जर्मनी) के शास्त्रभण्डारों में सुरक्षित है। इनमें से अहमदाबाद, ईडर, इन्दौर और सागर की चार पाण्डुलिपियों की जीराक्स प्रतियाँ प्राप्त कर ली हैं। इस टीका का रचयिता अज्ञात है।

षट्पाहुड की एक टब्बा टीका भूधर ने लिखी है। इसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियान के शास्त्रभण्डार में विद्यमान होने की सूचना है। इसके पत्र ६२, वेष्टन संख्या २४४ है।[९] यह प्रति संवत् १७५१ की है। इस पाण्डुलिपि के विवरण से ज्ञात होता है कि यह टब्बा टीका भूधर ने प्रतापसिंह के लिए बनाई थी।

संवत् १८०१ में षट्पाहुड का हिन्दी-पद्यानुवाद देवीसिंह छावड़ा ने किया है। इस अनुवाद की तीन पाण्डुलिपियाँ ज्ञात हैं। इन तीनों के अलग-अलग स्थानों में विद्यमान होने की सूचना है। एक दिगम्बर जैन मन्दिर आदिनाथ, बूंदी,[१०] एक पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, इन्दरगढ़[११] और एक संभवनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर[१२] के शास्त्रभण्डार में है। आदिनाथ मंदिर, बूँदी की प्रति संवत् १८५० की है। इससे ज्ञात होता है कि देवीसिंह छावड़ा ने षट्पाहुड का हिन्दी पद्यानुवाद अष्टपाहुड की ढूढारी भाषा वचनिका (पं० जयचन्द छावड़ा संवत् १८६७) से पूर्व किया है।

संवत् १८२०-१८८६ के विद्वान् पं० जयचन्द छावड़ा ने संवत् १८६७ में अष्टपाहुड पर ढूढारी भाषा में वचनिका टीका लिखी।[१३] प्राकृत-संस्कृत में लोगों की दक्षता प्रायः समाप्त हो जाने के कारण यह टीका बहुत प्रसिद्ध हुई। यही कारण है कि इस टीका युक्त अष्टपाहुड की पाण्डुलिपियाँ गाँवों-गाँवों में अब भी सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। यह टीका प्रकाशित हो चुकी

---

९ राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की ग्रन्थसूची, भाग ३, पृष्ठ १६४।

१० आचार्य कुन्दकुन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. १५७।

११ राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की ग्रन्थसूची, भाग ५, पृष्ठ २१६।

१२ वही।

१३ संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय॥
—अष्टपाहुड (पाण्डुलिपि), पत्र २०७, आचार्य महावीरकीर्ति सरस्वती भवन, राजगीर।

है।[१४] पं० जयचन्द छावड़ा ने समयसार, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, द्रव्यसंग्रह, परीक्षामुख, आप्तमीमांसा, पत्रपरीक्षा, सर्वार्थसिद्धि, ज्ञानार्णव आदि अनेक ग्रन्थों पर ढूढारी भाषा वचनिका लिखी है।[१५]

षट्पाहुड पर संवत् १७८९ से पूर्व भी एक हिन्दी टीका लिखी गयी है। इस टीका की ३ पाण्डुलिपियाँ ज्ञात हैं। २ प्रतियाँ दिगम्बर जैन मन्दिर अभिनन्दन स्वामी, बूँदी और एक प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर नागदी, बूँदी में सुरक्षित है।[१६] अभिनन्दन स्वामी मन्दिर की वेष्टन संख्या १४४ की प्रति संवत् १७८९ में लिखी गई। यह पाण्डुलिपि जती गंगारामजी ने सवाई जयसिंह के राज्य में माणपुर ग्राम में लिखी। इस टीका का लेखक अज्ञात है।

इस तरह अब तक के अनुसंधान से अष्टपाहुड एवं षट्पाहुड की ग्यारह टीकाओं की जानकारी प्राप्त हुई है। ये टीकाएँ कन्नड़, संस्कृत, ढूढारी और हिन्दी भाषा में की गईं हैं। उपर्युक्त ग्यारह टीकाओं में से श्रुतसागरसूरि-कृत संस्कृत तथा जयचन्द छावड़ा कृत ढूढारी भाषा वचनिका टीका ही मुद्रित हुई है।

विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि अष्टपाहुड की टीकाओं तथा टीकाकारों और प्राचीन पाण्डुलिपियों के विषय में यदि कोई जानकारी हो तो मुझे दें।

---

१४ अष्टपाहुड, मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, वी.सं. २४५०।

१५ जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश, भाग २, पृष्ठ ३२३।

१६ राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की ग्रन्थसूची, भाग ५, पृष्ठ २१९।

प्राकृत और संस्कृत : समानान्तर भाषाएं

डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

यह सर्वविदित है कि प्राकृत-भाषा ने मध्ययुग में प्रचुर जनसम्मान अर्जित किया। आधुनिक विद्वानों ने प्राकृत के सम्बन्ध में इस पक्ष का समर्थन किया है कि यह भाषा संस्कृत से नहीं उत्पन्न हुई है, अपितु प्रकृति के नियमानुसार यह स्वयं सर्वप्रथम आविर्भूत हुई। क्योंकि, 'प्राकृत' नाम ही इस बात को स्वयं संकेतित कर देती है। आधुनिक विद्वानों का यहाँ तक कहना है कि संस्कृत ही प्राकृत का संस्कार-सम्पन्न रूप है।

किन्तु, आचार्य हेमचन्द्र सूरि के कथन से उक्त तथ्य खण्डित हो जाता है। आचार्य सूरि ने मूल भाषा संस्कृत से प्राकृत का उद्भव मानते हुए यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि "प्रकृतिः संस्कृतम तत आगतं प्राकृतम्" अर्थात्, मूल प्रकृति संस्कृत से ही प्राकृत का आविर्भाव हुआ। सच पूछिए, तो आधुनिकों की इस धारणा में कि 'प्राकृत संस्कृत भाषा से भी प्राचीन है,' किसी सबल प्रमाण की दृढ़ता नहीं है। इसलिए कि संस्कृत निबन्ध वेद से प्राचीन कोई भी प्राकृत निबन्ध कृति उपलब्ध नहीं। इसके अतिरिक्त, साधारण बुद्धि-वाले भी मोटे तौर पर यह जानते हैं या जान सकते हैं कि प्राकृत-भाषा में संस्कृत का मूलाधार स्पष्ट है। और यही कारण है कि प्राकृत के अनेक शब्दानुशासन संस्कृत में लिपिबद्ध हुए हैं। भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' ऐसा ग्रन्थ है, जिसके सत्रहवें अध्याय में, विभिन्न भाषाओं के निरूपण के क्रम में ६-२३वें पद्य तक प्राकृत-व्याकरण के सिद्धान्त निर्विष्ट हुए हैं और बत्तीसवें अध्याय में उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु, भरत के ये अनुशासन सम्बन्धी सिद्धान्त इतने संक्षिप्त और अपरिस्फुट हैं कि इनका उल्लेख केवल भाषागत ऐतिहासिक उपयोगिता को ही सिद्ध करता है।

संस्कृत-प्राकृत का पारस्परिक सम्बन्ध :

तत्त्वतः, संस्कृत और प्राकृत का सहभाव सनातन है। प्राकृत के गद्य या पद्य की जो अवतारणा संस्कृत में होती है, उसे 'छाया' नाम से सार्वकालिक प्रसिद्धि प्राप्त है। अतएव, यह सहज ही अनुमेय है कि संस्कृत और प्राकृत में छाया-मात्र का अन्तर है। इससे इस बात का सहज ही निरास हो जाता है कि प्राकृत की छाया पर संस्कृत उत्पन्न हुई है। प्रत्युत, इससे तो यही सुस्पष्ट होता है कि संस्कृत की छाया से ही प्राकृत की उत्पत्ति हुई, इसलिए,

यदि यह कहा जाय कि प्राकृत संस्कृत की ही "छाया-भाषा" है तो अत्युक्ति नहीं होगी। अथवा, ऐसा भी कहा जा सकता है कि संस्कृत और प्राकृत में काया-छाया का सम्बन्ध है।

संस्कृत का अपकर्ष : प्राकृत का उत्कर्ष :

परन्तु, एक समय ऐसा भी आया, जब प्राकृत के समक्ष संस्कृत विच्छाय या मलिन पड़ गई। मधुर-मधुरतर विषयों में प्राकृत को छोड़ संस्कृत का परिग्रहण जनसाधारण के लिए अत्यन्त ही अरुचिकर हो गया। प्रथित नौ रसों में शृङ्गार सर्वाधिक मधुर है, यह कौन रसज्ञ नहीं जानता, किन्तु तत्कालीन विद्वानों का यही निश्चय था कि शृङ्गार का सम्यक् परिपाक प्राकृत में ही अधिक सम्भव है। और शृङ्गार के अधिष्ठाता देवता कामदेव की केलि-भूमि प्राकृत ही मानी जाने लगी थी एवं उस समय साभिमान यह घोषणा की जाती थीं :

अमिअं पाउअकव्वं पढिउं सोउं ऊ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्तंतन्ति कुणन्ति ते कहं ण लज्जन्ति ॥
(अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥)

अर्थात्, 'प्राकृत-काव्य' को जो न पढ़ना ही जानते हैं, न सुनना ही, उन्हें काम की तत्त्वचिन्ता करते लज्जा होनी चाहिए। यह उद्घोषणा केवल प्राकृत के पण्डितों या पक्षपातियों की ही नहीं थी, अपितु संस्कृत के शीर्षस्थ विद्वानों ने भी उस समय प्राकृत की उत्कण्ठ प्रशंसा की थी। यायावरमूर्धन्य महाकवि राजशेखर को कौन संस्कृतज्ञ नहीं जानता, जिनके 'बालरामायण', 'बिद्धशालभंजिका' आदि रूपक-काव्य संस्कृत के रूप को बड़ी सुष्ठुता एवं सुचारुता से उभारते-सँवारते हैं एवं जिनकी प्रख्यात एवं सशक्त संस्कृत-कृति 'काव्यमीमांसा' पण्डित-समाज में साहित्यशास्त्र के असाधारण महत्त्व की स्थापना करती है। संस्कृत-सरस्वती के सौभाग्य-स्तम्भ ऐसे महाकवियों ने भी उस समय प्राकृत के समक्ष संस्कृत को गौण ठहरा दिया और अपने प्रसिद्ध सट्टक "कर्पूरमंजरी" में उस महाकवि ने साफ शब्दों में प्राणोन्मेषिणी प्राकृत की वकालत की :

परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धोवि होइ सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तियमिमाणम् ॥ (कर्पूरमंजरी)
(परुषा संस्कृतबन्धा प्राकृतबन्धोऽपि भवति सुकुमारः।
पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरं तावदेतेषाम् ॥)

अर्थात्, संस्कृत-बन्ध काव्य कठोर-कर्कश होते हैं, किन्तु प्राकृतबन्ध काव्य ललित और कोमल, यानी परुषता संस्कृत की और सुकुमारता प्राकृत की मौलिक विशेषता है। दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना पुरुष और स्त्री में—एक वज्र-कठोर, दूसरी कुसुम-कोमल।

प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैनमुनि जयवल्लह (जयवल्लभ) ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वज्जालग्ग (वज्यालग्न) में प्राकृत की संस्कृतातिशायी श्लाघा करते हुए कहा है :

ललिए महुरक्खरए जुवई-जणवल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइअकव्वे को सक्कइ सक्कअं पढिउम्॥
(वज्जालग्ग : जयवल्लह)

(ललिते मधुराक्षरे युवतिजनवल्लभे सशृङ्गारे।
सति प्राकृतकाव्ये कः शक्नोति संस्कृतं पठितुम्॥)

अर्थात्, मधर अक्षरोंवाले, अत्यधिक मनोरम, युवतियों के लिए प्रीतिकर एवं शृंगार रस से ओत-प्रोत प्राकृत-काव्य को छोड़ संस्कृत-काव्य को कौन पढ़ना चाहेगा?

ऐसी सम्भावना असहज नहीं कि देश, जलवायु आदि के प्रभाव से अथवा कण्ठ, तालु, जिह्वा आदि के विलक्षण अभिघात से या उच्चारणेन्द्रियों की अपटुता से या और भी किन्हीं कारणों से प्राकृत आदि भाषाओं की उत्पत्ति हुई हो, परन्तु इतना तो निश्चित है कि विभिन्न वर्गों के लोगों की पारस्परिक भाषिक स्पर्धा के कारण प्राकृत ने पर्याप्त प्रसार प्राप्त कर लिया। वैदिक आर्यों के साथ जब जैनों-बौद्धों आदि का धार्मिक संघर्ष उपस्थित हुआ, तब वैदिक आर्यों की अपनी धर्मभाषा संस्कृत हुई और उन आर्यों की प्रतिद्वन्द्विता में जैनों ने प्रमुखतया अर्द्ध-मागध प्राकृत और बौद्धों ने पालि (प्राकृत का ही एक भेद) को अपने धर्मप्रचार के लिए अपनाया। इस प्रकार रूप संरचना की बहुलता के कारण यह प्राकृत जब प्रौढ़ि-प्रकर्ष को पा गई, तब इसके लिए 'मध्ययुग' की कालसीमा निर्धारित की जाने लगी। अनादिकाल से ही संस्कृत, अपने स्वाभाविक सौष्ठव और क्रमशः प्राप्त संस्कार से उत्पन्न अनिर्वच सौन्दर्य की महिमा से बुद्धिवादियों के लिए अतिशय अभिनन्दनीय रही, और इसी संस्कृत का पदानुसरण एवं उसके साहित्य-वैभव—रस, गुण, अलंकार आदि—का अनुदान ग्रहण करके प्राकृत भी धीरे-धीरे प्रौढ़ि की पर्याप्तता और माधुर्य की अतिशयता से एक वारगी भर गई।

श्रीसम्पन्नता का यही काल प्राकृत का पूर्ण उपचय-काल माना गया। किन्तु, किसी का अतिशय उत्कर्ष भी प्रकारान्तर से उसके अपकर्ष का कारण बन जाता है। अपने उपचय या चरमोत्कर्ष-काल में प्राकृत-भाषा साहित्यिक भाषा बन गई, और ऐसी स्थिति में, जिस बात का खतरा बराबर बना रहता है, प्राकृत भी व्यावहारिक भाषिकता से दूर होती चली गई। भाषाविदों का यह प्रसिद्ध मत है कि व्याकरण के नियमों की मर्यादा में जकड़ जाने पर कोई भी भाषा व्यावहारिक नहीं रह जाती है। परिणामतः, साधारण जनता के बीच किसी एक दूसरी ही व्यावहारोपयोगी भाषा की उत्पत्ति का सूत्रपात होने लगता है। संस्कृत की भी यही दशा हो चुकी थी और नियम-नियन्त्रित प्राकृत को भी यह अनिवार्य दुर्दिन देखना ही पड़ा।

प्राकृत : अपभ्रंश के परिप्रेक्ष्य में :

इसी सन्दर्भ में हम अपभ्रंश के परिप्रेक्ष्य को लेकर थोड़ा और विचार करें। देववाणी संज्ञा को प्राप्त संस्कृत-भाषा में अनेक संस्कारों के आविर्भाव के कारण जब वह जनसामान्य के लिए कठिन पड़ने लगी, तब असाधारण समुज्ज्वल दृढ़ संस्कार-सम्पन्न, किन्तु स्त्री-बच्चों आदि के लिए उच्चारण में सौकर्य-रहित उस संस्कृत में विकृति उत्पन्न की जाने लगी, किन्तु उसका आधार यथावत् रहने दिया गया। इस प्रकार, संस्कृत का जो विकृत रूप लोगों के लिए प्राकृत (सुखोच्चार्य एवं सुबोध्य) हो गया, वही प्राकृत की संज्ञा से अभिहित होने लगा। और, जब प्रकृति भी उज्ज्वल नेपथ्यवाली होकर अनेक अलंकारों से चमकने लगी, तब उसकी भी स्थिति अनावश्यक गहनों से लदी एक शिथिल/सुन्दरी से अधिक बेहतर न रह सकी। साधारण वेश-भूषावाली स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने गृहकार्यों को बड़ी खूबी से निबटाती है, नख से शिखा तक अलंकृत-मर्यादित महिलाएँ उस प्रकार नहीं निबटा पाती, तथावत् अलंकृत प्राकृतभाषा भी जनोपयोगी कार्यों के लिए कारगर सिद्ध न होने पर शनैः शनैः व्यावहारिकता से तटस्थ होती चली गई, परिणामतः उसमें विकृति भी उत्पन्न की जाने लगी। फलतः, उसकी जगह कार्य-व्यवहार के क्षेत्र में अपभ्रंश-भाषा ने जन्म लिया। और जब अपभ्रंश-भाषा भी क्रम-क्रम से सौष्ठव-वृद्धि और साहित्यिक संस्कारों से उद्भासित होकर पुस्तकस्था हो गई, तब व्यवहार के लिए उसी अपभ्रंश के आधार पर प्रादेशिक भाषाओं की उत्पत्ति हुई, ऐसा सभी भाषातत्त्ववेत्ता जानते और मानते हैं। जिस समय प्राकृत और अपभ्रंश पुस्तकस्था भाषा बनी, उसी समय (सन्

११५० ई०) हेमचन्द्राचार्य ने प्राकृत के व्याकरण और कोश की रचना की।[१] इन दोनों रचनाओं के अन्त में अपभ्रंश के नियम और संस्कार संगृहीत हैं। अस्तु।

प्राकृत : विभिन्न विद्वानों के अभिमत :

प्राकृत की उपर्युक्त उत्पत्ति और व्युत्पत्ति की विवेचना ही अलम् नहीं है। इस सम्बन्ध में अनेक भारतीय और भारतीयेतर विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट करते हुए, अपने पक्ष के समर्थन में, बहुविध रोचक तर्क उपस्थित किये हैं। प्राचीन पण्डितों में हेमचन्द्रसूरि के अतिरिक्त मार्कण्डेय (प्राकृतसर्वस्व), धनिक (दसरूपक-टीका), वासुदेव (कर्पूरमंजरी-टीका), लक्ष्मीधर (षड्भाषाचन्द्रिका), सिंहदेवगणी, (वाग्भटालंकार-टीका), नरसिंह (प्राकृत शब्द-प्रदीपिका), नारायण (गीतगोविन्द : रसिकसर्वस्व-टीका) एवं शंकर (शाकुन्तल की टीका) ने एक स्वर होकर संस्कृत को ही प्राकृत की प्रकृति स्वीकार की है। इनके विपरीत, ग्यारहवीं शती के एक विद्वान् नमिसाधु ने रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' के एक श्लोक (२/१२) की व्याख्या करते हुए कहा है कि प्राकृत शब्द का अर्थ है लोगों का व्याकरण आदि के संस्कारों से रहित स्वाभाविक वचन-व्यापार—उससे उत्पन्न अथवा वही प्राकृत है। इसके पहले ही नवम शती के संस्कृत कवि राजशेखर ने प्राकृत को संस्कृत की योनि-विकासस्रोत कहा है। राजशेखर के भी पूर्व अष्टम शती के विद्वान कवि वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' महाकाव्य में प्राकृत को जनभाषा माना है। कवि के आशय को स्पष्ट करते हुए उक्त महाकाव्य के सम्पादक टीकाकार ने कहा है कि प्रकृति ही प्राकृत शब्दब्रह्म है और उसी के विकार या विवर्त्त संस्कृत आदि भाषाएँ हैं।'[२]

भारतीयेतर पण्डितों में डॉ० अल्फ्रेड सी० बुलनर तथा डॉ० रिचर्ड पिशेल ने भी मूलभाषा प्राकृत को ही मानने का सतर्क आग्रह प्रदर्शित किया है। डॉ० बुलनर अपने 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत'[३] नामक ग्रन्थ में प्राकृत का

---

१ द्र० 'गाथासप्तशती' की भूमिका : ले० भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, निर्णय-सागर प्रेस-संस्करण, सन् १९३३ ई०, पृ० ५।

२ अथवा प्रकृतिरेव प्राकृतं शब्दब्रह्म। तस्य विकारा विवर्त्ता वा संस्कृतादय इति मन्यते स्म कविः। गउडवहो, कविप्रशंसा, श्लो० सं० ९३ की टीका, भं० ओ० रि० इं०, पूना संस्क०, सन् १९२७ ई०।

३ प्र० पंजाब-विश्वविद्यालय, लाहौर, वि० सं०, सन् १९२८ ई०, पृ. ३४

विकास संस्कृत से न मानकर दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि संस्कृत शिष्ट समाज की भाषा रही और प्राकृत जनसाधारण के बीच बोली जाती थी। डॉ० पिशेल ने अपनी पुस्तक 'प्राकृतभाषाओं का व्याकरण'[४] में मूल प्राकृत को ही जनभाषा माना है और यह बताया है कि साहित्यिक प्राकृतें संस्कृत के समान ही सुगठित हैं।

अर्वाचीन भारतीय विद्वानों में डॉ० प्रबोध बेचरदास पण्डित, डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० ए० एन० उपाध्ये, डॉ० भोलाशंकर व्यास, डॉ० हरदेव बाहरी, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री आदि ने प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुकोणीय विचार किये हैं और कुल मिलाकर सबने प्राकृत को प्रत्यक्ष रूप से संस्कृतोद्भूत मानने की अपेक्षा संस्कृतावृत्त या संस्कृताधृत या संस्कृत का शाखाभेद माना है। डॉ. प्रबोध बेचरदास पण्डित[५] संस्कृत के बाह्य रूप के भीतर प्राकृत को प्रवाहित देखते हैं और ऐसे संस्कृत-रूपों के ग्रन्थों में महाभारत को प्रमुखतया प्रस्तुत करते हैं। डॉ० पिशेल से प्रभावित डा. जगदीशचन्द्र जैन को[६] भी संस्कृत से प्राकृत को उद्भूत मानना स्वीकार नहीं है। उनका कहना है कि वैदिक आर्यों की सामान्य बोलचाल, जो ऋग्वेद की संहिताओं की साहित्यिक भाषा से जुदा है, प्राकृत का मूल रूप है। डॉ० हरदेव बाहरी[७] ने भी प्राकृतों से संस्कृत का विकास माना और अपने तर्क में कहा है कि प्राकृतों से वेद की साहित्यिक भाषाका विकास हुआ प्राकृतों से संस्कृत का विकास भी हुआ और प्राकृतों से इनके अपने साहित्यिक रूप भी विकसित हुए।

---

४ अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी, प्र० बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, पृ० १४।

५ प्राकृत-भाषा, प्र० श्रीपार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, सन् १९५४ ई०, पृ० १६।

६ प्राकृत-साहित्य का इतिहास, प्र० चौखम्बा-संस्कृत-विद्याभवन, वाराणसी, पृ० ५।

७ प्राकृत-भाषा और उसका साहित्य, प्र० राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, पृ० १३।

छान्दस से प्राकृत का विकास :

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री[८] ने डा० जगदीशचन्द्र जैन के विचारों को व्यवस्थित करते हुए प्राचीम आर्यभाषा 'छान्दस' से प्राकृत का विकास माना है और फिर अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्राकृत का विकास प्राचीन आर्यभाषा, यानी तत्कालीन जनभाषा छान्दस से हुआ है और लौकिक संस्कृत या संस्कृत-भाषा भी छान्दस से विकसित है। अतः, विकास की दृष्टि से प्राकृत और संस्कृत दोनों सहोदर भाषाएँ हैं। दोनों एक ही स्रोत से समुद्भूत हैं।

इस प्रकार, उपर्युक्त समग्र विवेचन से तीन धारणाएँ स्थिर होती हैं, १. प्राकृत संस्कृत से उद्भूत है। २. प्राकृत मूल भाषा है और उसी से संस्कृत विकसित हुई है। ३. प्राकृत और संस्कृत दो स्वतन्त्र भाषाएँ हैं और दोनों का विकास-स्रोत-वैदिक 'छान्दस' भाषा है। तीसरी धारणा के अनुसार डॉ० शास्त्री[९] ने प्राकृत के दो मूल भेद माने हैं : कथ्य और साहित्य-निबद्ध। कथ्यभाषा प्रथमस्तरीय प्राकृत है, जो प्राचीन समय में जनबोली के रूप में प्रचलित थी और जिसका साहित्य आज उपलब्ध नहीं। किन्तु, उसके मूलरूप की झलक 'छान्दस'-साहित्य में मिलती है। और, द्वितीयस्तरीय प्राकृत तीन युगों में विभक्त है : प्रथम युग, मध्ययुग और उत्तर अर्वाचीन युग या अपभ्रंश-युग। डॉ० शास्त्री ने प्रथम युग (ई० पू० छठी शती से ईसवी की द्वितीय शती तक) की प्राकृतों में शिलालेख-निबद्ध-प्राकृत-धम्मपद की प्राकृत, आर्ष पालि, प्राचीन जैनसूत्रों की प्राकृत और अश्वघोष के नाटकों की प्राकृतों की परिगणना है। मध्ययुगीन (सन् २०० से ६०० ई० तक) प्राकृतों में भास और कालिदास के नाटकों की प्राकृत, गीतिकाव्यों और महाकाव्यों की प्राकृत, परवर्त्ती जैनकाव्य-साहित्य की प्राकृत वैयाकरणों द्वारा निरूपित और अनुशासित प्राकृतें एवं 'वृहत्कथा' की पैशाची-प्राकृत परिगणित किया है और उत्तर अर्वाचीन युग या अपभ्रंश-युग (सन् ६०० से १२०० ई० तक) में विभिन्न प्रदेशों की प्राकृतों को परिगणनीय माना है।

---

८ प्राकृत-भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्र० तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ० ६, १३ तथा १६।

९ प्राकृत-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृ० १७।

प्राकृत और संस्कृत का सहविकास :

इस तरह, प्राकृत की स्थिति ई० पू० छठी शती से ईसवी की १२वीं शती तक संस्कृत के साथ-साथ समानभाव से पल्लवित-पुष्पित होती हुई परिलक्षित होती है। और, तब यह अस्पष्ट नहीं रह जाता कि प्राकृत स्वतन्त्र रूप से विकसित होनेवाली एक ऐसी जनोपयोगी भाषा रही है, जिसका साहित्य पर्याप्त मौलिक और समृद्ध रहा है। यही कारण है कि महाकवि राजशेखर जैसे संस्कृतसिद्ध पण्डितों ने भी प्राकृत की भाषिक और साहित्यिक समृद्धि से प्रभावित होकर प्राकृत का यत्परोनास्ति अनुशंसन किया और इसी भाषा में 'कर्पूरमंजरी' जैसे महत्वपूर्ण सट्टक की रचना की। साथ ही, प्राकृत के अनेक अधीतियों ने भी संस्कृत को प्राकृत की परिपोषिका या आधारभूमि के रूप में स्वीकार किया। स्पष्ट है कि प्राकृत और संस्कृत दोनों एक दूसरे की पूरक या सहयोगी भाषा के रूप में समादृत होती रही हैं और दोनों ही भाषाएँ दोनों भाषाओं के पण्डितों को मोहित प्रभावित करती रही हैं। द्वेष या विभेद की जो कुछ गुंजाइश यदा-कदा दिखाई पड़ती रही है, वह भाषिक या साहित्यिक स्तर पर नहीं, अपितु राजनीतिक या धार्मिक दुराग्रह के आधार पर ही मानी जाएगी। खास कर, सम्पूर्ण संस्कृत-नाटकों के स्त्री-पात्रों या निम्नवर्गीय पात्रों के कथोपकथनों में प्राकृत का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि संस्कृत जहाँ घर से अन्यत्र की बोलचाल की व्यावहारिक भाषा थी, वहीं प्राकृत घरेलू बाग्व्यवहार की। इसलिए, यह स्वतः स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाएँ समानान्तर रूप से विकसित होने वाली एक ही शाखा की दो स्वतन्त्र रूप रहीं और दोनों के भाषिक एवं साहित्यिक तत्वों का पारस्परिक आदान-प्रदान समान रूप से होता है। इसलिए, प्राकृत-साहित्य के तात्विक अध्ययन के बिना संस्कृत-साहित्य का अध्ययन एकांगी ही माना जायगा। सच पूछिए, तो संस्कृत-साहित्य के समानान्तर अध्ययन की परिपूर्णता प्राकृत-साहित्य में प्राप्त तत्वों के अध्ययन में ही निहित है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

उसी समय पाताल लंका में खर और चन्द्रनखा के शम्बूक और सुन्द नामक दो पुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुए। माता-पिता के निषेध करने पर भी शम्बूक सूर्यहास नामक खड्ग प्राप्त करने के लिए दण्डकारण्य गया और वहाँ क्रौंचरेवा नदी के तट पर बाँस के झाड़ के मध्य जाकर अवस्थित हो गया और मन ही मन बोला, 'यहाँ रहते हुए यदि कोई मुझे साधना से च्युत करना चाहेगा तो मैं उसकी हत्या कर दूँगा।' तदुपरान्त वह एकाहारी विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय शम्बूक वटवृक्ष की शाखा से अपने दोनों पांव बाँधकर अधोमुख होकर सूर्यहास खड्ग दानकारिणी विद्या का जप करने लगा। यह विद्या बारह वर्ष एवं सात दिनों तक जप करने से सिद्ध होती है। इस प्रकार उल्लू की भाँति अधोमुख होकर साधना करते हुए बारह वर्ष और चार दिन बीत गए। सिद्ध होने की इच्छा से म्यान में रहा हुआ सूर्यहास खड्ग आकाश में आलोक और सुगन्ध बिखेरता हुआ बाँस के झाड़ के पास आया। ठीक उसी समय लक्ष्मण भी इधर-उधर घूमते हुए वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होंने सूर्य किरण के समूह रूप उज्ज्वल सूर्यहास खड्ग को देखा। कौतूहली लक्ष्मण ने उसे हाथ में लेकर म्यान से बाहर निकाला। अपूर्व शस्त्र देखने का कौतूहल तो क्षत्रिय मात्र को होता है। तदुपरान्त उसकी धार की परीक्षा लेने के लिए पार्श्ववर्ती बाँस झाड़ को कमल-नाल की तरह एक बार में ही काट डाला। उसी बाँस झाड़ में रहा हुआ शम्बूक का सिर भी बाँस झाड़ के साथ ही कट-कर लक्ष्मण के सम्मुख आ गिरा। यह देखकर लक्ष्मण ने बाँस झाड़ में प्रवेश किया। तब उन्होंने लटकता हुआ धड़ भी देखा। यह देखकर लक्ष्मण स्वनिन्दा करने लगे—'मुझे धिक्कार है जो कि मैं ऐसा कार्य कर बैठा। जो युद्ध नहीं करे, निरस्त्र हो, निरपराधी हो, मैंने ऐसे की हत्या कर डाली है।' फिर वे राम के पास गये और सारी बात बताई और उन्हें वह खड्ग दिखाया। खड्ग देखकर राम बोले, 'इस खड्ग का नाम सूर्यहास है। तुमने इसके आराधक को मार डाला है। इसका कोई उत्तर साधक भी निकट ही होगा।'

उसी समय पाताल लंका में रावण की बहिन चन्द्रनखा ने सोचा तपस्या की अवधि आज पूर्ण हो गयी है। मेरा पुत्र सूर्यहास खड्ग को अवश्य ही सिद्ध करेगा। अतः उसके लिए पूजा की सामग्री और आहार-पानी लेकर मुझे

जाना चाहिये। यह सोचकर वह प्रसन्नचित्त वहाँ पहुँची और पुत्र का कटा हुआ मस्तक जिसमें कुण्डल लटक रहे थे देखा। यह देखकर वह, 'हा वत्स शम्बूक, हा वत्स शम्बूक, तू कहाँ गया कहती हुयी जोर-जोर से चीत्कार करने लगी। उसी समय उसकी दृष्टि मिट्टी पर उभरे लक्ष्मण के मनोहर पद-चिह्नों पर पड़ी। जिसने मेरे पुत्र को मारा है यह उसी का पदचिह्न है ऐसा सोचकर वह पदचिह्नों का अनुसरण करती हुयी आगे बढ़ी और थोड़ी ही देर में एक वृक्ष के नीचे सीता और लक्ष्मण सहित नयनाभिराम राम को बैठे देखा। राम का सुन्दर रूप देखकर वह तत्काल काम के वशीभूत हो गयी। ओह! महाशोक के समय भी कामिनियाँ किस प्रकार काम के वशीभूत हो जाती है।

तदुपरान्त नागकन्या का सुन्दर रूप धारण कर काम पीड़िता चन्द्रनखा रोमांचित कलेवर लिए राम के पास गयी। उसे देखकर राम ने पूछा, 'भद्रे, कृतान्त के आवास तुल्य इस भीषण दण्डकारण्य में तुम अकेली कैसे आयी?' उसने प्रत्युत्तर में कहा, 'मैं अवन्ती राजा की कन्या हूँ। रात्रि के समय जब प्रासाद में सो रही थी कोई खेचर मुझे वहाँ से उठा कर यहाँ ले आया। इस बीच अन्य कोई विद्याधर कुमार मुझे देखकर हाथ में खड़ग लेकर उससे बोला, 'ओ दुराचारी, रत्नहार को जिस प्रकार बाज पक्षी ले जाता है उसी भाँति इस स्त्री-रत्न को हरण कर तू कहाँ ले जा रहा है? मैं यहाँ तेरा काल बनकर आया हूँ।' यह सुनकर मेरा अपहरणकर्त्ता खेचर मुझे छोड़कर उसके साथ युद्ध करने लगा। बहुत देर तक उनमें खड़ग युद्ध होता रहा। अन्त में मदमस्त हस्तियों की तरह दोनों की ही मृत्यु हो गयी। तभी से मैं अब कहाँ जाऊँ सोचती हुई इधर-उधर घूम रही थी कि मरुभूमि में छायादार वृक्ष की तरह पुण्ययोग से आपको देखा। हे स्वामी, मैं एक कुलीन कुमारी हूँ अतः आप मेरा पाणि ग्रहण करें। महापुरुषों से की गई याचना कभी व्यर्थ नहीं जाती।'

उसकी बात सुनकर परम बुद्धि सम्पन्न राम और लक्ष्मण एक दूसरे को देखते हुए सोचने लगे, यह अवश्य ही कोई मायाविनी नट की तरह वेश धारण किए कुछ नाट्य का अभिनय कर हमलोगों को छलने के लिए आयी है। राम हास्य ज्योत्स्ना से ओष्ठों को विकसित करते हुए उससे बोले, 'मैं तो यहाँ पत्नी सहित अवस्थित हूँ अतः तुम पत्नीविहीन लक्ष्मण के पास जाओ।' तब चन्द्रनखा ने लक्ष्मण से विवाह करने की प्रार्थना की। लक्ष्मण बोले, 'तुम पहले मेरे पूज्य अग्रज के पास गयी थी। इसलिए तुम भी मेरे लिए पूज्या बन गयी हो। अतः इस विषय में तुम मुझे अधिक मत कहो।'

इस प्रकार अपनी प्रार्थना अस्वीकृत होने एवं पुत्रवध के कारण वह अत्यन्त कुपित हो उठी। वह तत्काल पाताल लंका गयी और अपने स्वामी खर और अन्यान्य विद्याधरों को पुत्र का निधन वृतान्त बता दिया। खर तत्काल चौदह हजार विद्याधरों की सेना लेकर राम को पीड़ित करने के लिए उस प्रकार दण्ड कारण्य पहुँचा जिस प्रकार हस्ती पर्वत को पीड़ित करने के लिए पहुँचता है।

मेरे रहते राम युद्ध करने जाएँ यह उचित नहीं है ऐसा सोचकर लक्ष्मण ने राम से युद्ध में जाने की आज्ञा माँगी। राम बोले, 'वत्स, विजयी हो। किन्तु युद्ध में यदि कोई संकट का समय आए तो मुझे पुकारने के लिए सिंहनाद करना। लक्ष्मण ने यह स्वीकार कर लिया। उन्होंने राम की आज्ञा लेकर धनुष बाण उठाया और युद्ध के लिए चल पड़े। वहाँ जाकर शत्रु सैन्य का उसी प्रकार हनन करने लगे जिस प्रकार गरुड़ सर्प को विनष्ट करता है।

जब युद्ध जोर पकड़ने लगा तो अपने पति के पक्ष को प्रबल करने के लिए चन्द्रनखा रावण के निकट गयी और बोली, 'भाई, राम और लक्ष्मण दो अज्ञात पुरुष दण्डकारण्य में आए हैं। उन्होंने तुम्हारे भानजे को मार डाला है। यह सुनकर तुम्हारे बहनोई खर स्व-सैन्य लेकर वहाँ गए हैं और लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे हैं। राम अनुज और अपने बल के गर्व पर स्वतन्त्र रूप से बैठे अपनी पत्नी सीता के साथ विलास कर रहे है। सीता तो स्त्रियों के रूप लावण्य की चरम सीमा है। उसके जैसी तो न कोई देवी, न कोई नागकन्या, न कोई मानवी है। वह तो एकदम अनन्य है। उसका रूप तो सुर-असुरों की स्त्रियों को दासी बनाने लायक है। उसका रूप तीनों लोक में अनुपम और अवर्णनीय है। भाई, इस समुद्र से द्वितीय समुद्र तक तुम्हारा अधिकार है। अतः पृथ्वी के समस्त रत्न तुम्हारे अधिकार में है। एतदर्थ रूप सम्पत्ति से सबकी दृष्टि को अनिमेष कारिणी उस स्त्री-रत्न को तुम ग्रहण करो। यदि तुम उसे ग्रहण नहीं कर सके तो तुम रावण नहीं हो।'

यह सुनकर रावण उसी मुहुर्त में पुष्पक विमान में बैठकर विमान को आदेश दिया—'हे विमान राज, जहाँ सीता है तुम मुझे शीघ्र वहीं ले चलो।' सीता के निकट जाने की रावण के मन में जो इच्छा थी, उसी की स्पर्द्धा करता हुआ वह विमान द्रुतवेग से वहाँ पहुँचा जहाँ सीता अवस्थित थी। वहाँ उग्र तेज सम्पन्न राम को देखकर रावण उसी प्रकार दूर जाकर खड़ा हो गया जिस प्रकार अग्नि को देखकर सिंह दूर खड़ा हो जाता है। सोचने लगता है सिंह के सामने पड़ने पर भी बाढ़ विक्षुब्ध नदी को पार करना जिस

प्रकार दुष्कर है उसी प्रकार उग्र तेजधारी राम के निकट से सीता को हरण करना दुष्कर है। अतः उसने अवलोकिनी विद्या का स्मरण किया। विद्या तत्काल दासी की तरह करबद्ध बनी, उसके सम्मुख उपस्थित हुयी। रावण उससे बोला, 'सीता हरण में तुम मेरी सहायक बनों।' विद्या ने जवाब दिया, 'वासुकि नाग के मस्तक से मणि लाना सरल है किन्तु राम के पास से सीता को ले जाना देवों के लिए भी कठिन है। फिर भी इसका एक उपाय है। युद्ध में जाने के समय राम ने लक्ष्मण से कहा था यदि मेरी आवश्यकता आ पड़े तो तुम सिंहनाद करना। इसी संकेतानुसार सिंहनाद करने पर यदि राम लक्ष्मण के पास चले जाएँ तो सीता हरण सहज हो सकता है।' रावण ने वैसा ही करने का आदेश दिया। तब विद्या ने कुछ दूर जाकर ठीक लक्ष्मण की ही भाँति सिंहनाद किया।

सिंहनाद सुनकर राम सोचने लगे, यद्यपि हस्तीमल्ल-से मेरे अनुज के लिए कोई प्रतिमल्ल नहीं है, जो लक्ष्मण को संकट में डाल सके पृथ्वी पर ऐसा कोई पुरुष ही नहीं है, फिर भी उसका सिंहनाद संकेतानुसार क्यों सुना जा रहा है?

इस प्रकार सोच-विचार करते हुए महामनस्वी राम जब व्याकुल हो उठे उसी समय लक्ष्मण के प्रति सीता का जो वात्सल्य भाव था उसी वात्सल्य भाव को व्यक्त करती हुई सीता बोली, 'हे आर्यपुत्र, वत्स लक्ष्मण निश्चय ही किसी विपद् में पड़ गए हैं फिर भी आप उनके पास जाने में देर क्यों कर रहे हैं? शीघ्र जाकर उनकी रक्षा कीजिए।'

सीता का यह कथन और सिंहनाद से प्रेरित होकर राम अशुभ शकुनों की भी अवहेलना कर शीघ्र लक्ष्मण के पास चले गये।

अवसर पाकर रावण उसी मुहूर्त में विमान से नीचे उतरा और रोती हुयी जानकी को पकड़कर विमान में बैठा लिया। जानकी का क्रन्दन सुनकर 'हे स्वामिनी, कोई भय नहीं है, मैं आ गया हूँ। ओ निशाचर, 'ठहर-ठहर' कहते हुए क्रुद्ध बने जटायु पक्षी ने रावण पर आक्रमण कर दिया और अपने तीक्ष्ण नाखूनों द्वारा, कृषक जैसे दन्त द्वारा पृथ्वी को विदीर्ण करता है, उसी प्रकार उसके वक्षदेश को विदीर्ण करने लगा। रावण भी क्रुद्ध होकर खड्ग के भयंकर वार से जटायु के डैनों को काटकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। तदुपरान्त निःशंक होकर सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर अपना मनोरथ पूर्ण कर शीघ्रता के साथ आकाश पथ से उड़ चला।

'शत्रु का मन्थन करने वाले हे नाथ रामचन्द्र, हे वत्स लक्ष्मण, हे पूज्य

पिता, हे महावीर भाई भामंडल, जिस प्रकार पूजा द्रव्यों को काक ले जाता है उसी प्रकार यह रावण बर्बस तुम्हारी सीता को हरण कर ले जा रहा है।' इस प्रकार रोती हुई सीता ने आकाश और धरती को रुला दिया।

राह में अर्कजटि के पुत्र रत्नजटि ने सीता का क्रन्दन सुना। वह सोचने लगा यह क्रन्दन अवश्य ही राम की पत्नी सीता का है। यह शब्द समुद्र पर भी सुना जा रहा है। इससे लगता है राम-लक्ष्मण को प्रतारित कर रावण सीता का हरण कर लिए जा रहा है। इसलिए मेरे लिए यह उचित है कि इसी समय सीता को मुक्त कर अपने प्रभु भामण्डल का कुछ उपकार करूँ।

ऐसा सोचकर हाथ में खड्ग लिए रत्नजटि रावण की ओर दौड़ा। रत्नजटि का युद्ध आह्वान सुनकर रावण हँसा और अपने विद्याबल से उसका समस्त विद्याबल हरण कर लिया। फलतः डैनेहीन पक्षी की तरह रत्नजटि विद्यारहित होकर कम्बूद्वीप के कम्बुगिरि पर जा गिरा। तब से वह वहीं रहने लगा।

रावण जब विमान में बैठकर आकाश पथ से समुद्र को पार कर रहा था उसी समय कामातुर बना सीता को अनुनय करता हुआ बोला, 'हे जानकी, जो समस्त खेचर और भूलोक का स्वामी है उसकी यह महारानी का पद प्राप्त कर तुम क्यों क्रन्दन कर रही हो? आनन्दित होने के बजाय तुम क्यों शोक कर रही हो? मन्दभागी राम के साथ विधि ने तुम्हारा जो सम्बन्ध किया था वह अनुचित था। अतः जो उचित है मैंने वही कर दिया है। हे देवी, सेवा में दास की भाँति तुम मुझे पति रूप में स्वीकार करो। जब मैं तुम्हारा दास बनूँगा तो समस्त खेचर और भूचर तुम्हारे दास बन जाएँगे।'

जब रावण इस प्रकार कह रहा था तब सीता मन्त्राक्षरों की भाँति राम शब्द का जप माथा नीचे किए कर रही थी। सीता को प्रत्युत्तर न देते हुये देखकर कामातुर रावण ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया। पर-पुरुष के स्पर्श से कातर सीता ने तत्क्षण अपने पैर सरका लिए और क्रुद्ध होकर उससे बोली, 'ओ निर्दय निर्लज्ज, अल्प समय में ही पर-स्त्री कामना का फल मृत्यु तू प्राप्त करेगा।'

उसी समय सारण आदि मन्त्री और अन्य समस्त राक्षसगण रावण के सम्मुख आए। महाउत्साही और महासाहसिक कार्य का कर्त्ता अत्यन्त बलवान रावण ने उत्सवपूर्वक लंका नगरी में प्रवेश किया।

उस समय सीता ने यह नियम लिया—जब तक उसे राम-लक्ष्मण का संवाद नहीं मिलेगा वह आहार-पानी ग्रहण नहीं करेगी।

तदुपरान्त तेजनिधि रावण ने सीता को लंका की पूर्व दिशा में अवस्थित देवों का क्रीड़ास्थल नन्दन वन-सा और खेचरी रमणियों का विलासधाम देवरमन नामक उद्यान में रक्तवर्ण अशोक वृक्ष के नीचे त्रिजटा आदि राक्षसियों की देख-रेख में रखकर हर्षित मन से स्व-प्रासाद में चला गया।

पंचम सर्ग समाप्त

षष्ठ सर्ग

लक्ष्मण के जैसा सिंहनाद सुनकर राम धनुष लेकर शीघ्र वहाँ पहुँचे जहाँ लक्ष्मण शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहे थे। राम को देखकर लक्ष्मण ने पूछा, 'हे आर्य, सीता को अकेला छोड़कर आप यहाँ क्यों आ गए?' राम ने कहा, 'तुमने विपद सूचक सिंहनाद किया था इसलिए मैं यहाँ आया हूं।' लक्ष्मण ने कहा मैंने तो सिंहनाद नहीं किया था किन्तु जब आपने सुना है इससे लगता है कोई हमारी प्रतारणा कर रहा है। आर्या सीता को हरण करने के लिए किसी ने यह कुमन्त्रणा कर आपको वहाँ से हटा दिया है। सिंहनाद करने का अन्य तो कोई कारण समझ में नहीं आ रहा है। अतः हे, आर्य आप शीघ्र सीता की रक्षा के लिए जाएँ।'

लक्ष्मण की बात सुनकर राम शीघ्रतापूर्वक अपने स्व-स्थान को लौट गए। किन्तु वहाँ सीता को न देखकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कुछ देर पश्चात् चेतना लौटने पर जब उन्होंने चारों ओर देखा तो उन्हें मरणासन्न जटायु दिखायी पड़ा। उसे देखकर राम सोचने लगे, कोई मायवी छलकर मेरी प्रिया को हरण कर ले गया है। यह महात्मा पक्षी हरण कर्त्ता के सम्मुखीन हुआ है। इसलिए उसी ने इसके डैनों को काट टाला है। उसपर प्रत्युपकार करने की भावना से राम ने अन्त समय उसे परलोक यात्रा के पाथेय रूप में नमस्कार महामंत्र सुनाया। तत्काल ही वह मृत्यु को प्राप्त कर महेन्द्र कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ। राम सीता के सन्धान में इधर-उधर उस वन में घूमने लगे।

उधर लक्ष्मण खर की वृहद सैन्यवाहिनी के साथ अकेले ही युद्ध कर रहे थे। युद्ध में सिंह का सहयोगी कोई नहीं होता। खर का अनुज त्रिशिरा अपने ज्येष्ठ भ्राता से बोला, 'ऐसे तुच्छ व्यक्ति के साथ आप क्यों युद्ध कर रहे हैं?' ऐसा कहकर उसे युद्ध से निवृत्त कर स्वयं लक्ष्मण से युद्ध करने लगा। रामानुज लक्ष्मण ने रथ में बैठकर युद्ध करने को उद्यत त्रिशरा को पतंग की तरह मार डाला।

उसी समय पाताल लंकाधिपति चन्द्रोदर का पुत्र विराध अपनी समस्त सेना लेकर वहाँ पहुँचा, राम के शत्रु का नाश और उनका आराधक होने की इच्छा से विराधने लक्ष्मण को नमस्कार कर कहा, 'मैं आपके शत्रु का द्वेषी और बैरी हूँ और आपका सेवक। रावण के इन सेवकों ने मेरे पराक्रमी पिता चन्द्रोदर को निर्वासित कर पाताल लंका पर स्वयं का अधिकार कर लिया है। हे देव, अन्धकार को विनष्ट करने में यद्यपि सूर्य का कोई सहायक नहीं होता फिर भी शत्रु का विनाश करने में आपका यह सेवक सामान्य सहायता करने में प्रस्तुत है। अतः मुझे युद्ध करने का आदेश दें।'

लक्ष्मण ने हँसकर उत्तर दिया, 'मैं अभी इन शत्रुओं का संहार कर देता हूँ, तुम खड़े-खड़े देखो। कारण अन्य की सहायता से विजय पाना पराक्रमी पुरुषों के लिए लज्जास्पद है। आज से मेरे अग्रज राम तुम्हारे स्वामी हैं, मैं यहीं तुम्हें पाताल लंका का सिंहासन प्रदान कर रहा हूँ।'

अपने विरोधी विराध को लक्ष्मण के पक्ष में जाते देखकर खर ने क्रोधित होकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी और लक्ष्मण को सम्बोधित कर बोला, 'ओ विश्वासघातक, बता मेरा पुत्र शम्बुक कहाँ है? मेरे पुत्र की हत्या कर क्या तू इस तुच्छ विराध की सहायता से बचना चाहता है?'

लक्ष्मण ने हँसकर कहा, 'तुम्हारा भाई त्रिशिरा अपने भतीजे को देखने के लिए बहुत उत्सुक हो उठा था। अतः उसे वहाँ भेज दिया है। अब यदि तुम अपने पुत्र और अनुज को देखने के लिए उत्सुक हुए हो तो तुझे भी वहाँ भेज देने के लिए मैं धनुष उठाए प्रस्तुत हूँ।

'ओ मूढ़, मेरे पैरों तले आकर जिस प्रकार चींटी मर जाती है उसी प्रकार प्रमाद वश की हुयी मेरी क्रीड़ा के प्रहार से तेरा पुत्र मारा गया है। उसमें मेरा कोई पराक्रम नहीं था किन्तु स्वयं को योद्धा कहनेवाले अभिमानी तुम मेरा रण कौतुक पूर्ण करो तो वनवास में भी मैं दानी बनूँगा अर्थात् मैं तुम्हें यमराज को अर्पित करूँगा।'

लक्ष्मण का यह कथन सुनकर खर उन पर हस्ती जैसे गिरिशिखर पर प्रहार करता है उसी प्रकार तीक्ष्ण शरों से प्रहार करने लगा। सूर्य जैसे अपने किरण जाल से आकाश को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार लक्ष्मण ने भी सहस्रकंक पत्रों से—कंक पक्षी के पंख युक्त तीरों से आकाश मण्डल को आच्छादित कर दिया। इस प्रकार लक्ष्मण और खर में भीषण युद्ध हुआ जो कि खेचरों के लिए भयंकर और यमराज के लिए तो महोत्सव तुल्य था।

उसी समय आकाश में यह स्वर गूँजा—'वासुदेव के सन्मुख जिसका ऐसा पराक्रम है वह खर प्रतिवासुदेव से भी अधिक वीर है।' आकाश में इस स्वर के गूंजित होने से लक्ष्मण ने इसका वध करने में समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। अतः क्षुरप्र अस्त्र से उसका शिरोच्छेद कर डाला। तब खर का भाई दूषण लक्ष्मण के साथ सैन्य सहित युद्ध को प्रस्तुत हुआ। किन्तु लक्ष्मण ने जिस प्रकार दावानल यूथ सहित गजेन्द्र को विनष्ट कर देता है उसी प्रकार अल्प समय में ही उसे विनष्ट कर डाला।

फिर विराध को लेकर लक्ष्मण लौटे। उसी समय उनका बाँया नेत्र फड़कने लगा। अतः आर्या सीता और राम के लिए उनके मन में अशुभ शंकाएँ उठने लगीं। बहुत दूर जाने पर उन्होंने राम को अकेले एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। इससे उनके मन में अत्यन्त खेद उत्पन्न हुआ। वे राम के सम्मुख पहुँचे किन्तु राम उन्हें देख न सके। वे उस समय विरहकातर होकर आकाश की ओर मुख किए बोल रहे थे, 'हे वनदेवता, मैंने समस्त वन का कण-कण छान मारा किन्तु कहीं मैंने सीता को नहीं पाया। यदि तुमने उसे देखा हो तो बताओ। भूत-प्रेत और शिकारी श्वापदपूर्ण इस भयंकर वन में सीता को अकेला छोड़कर मैं लक्ष्मण के पास गया और हजारों राक्षस योद्धाओं के मध्य लक्ष्मण को अकेला छोड़कर पुनः यहाँ लौट आया। हाय मुझ-से दुर्बुद्धि की बुद्धि भी कैसी है? हे वत्स लक्ष्मण, तुम्हें उस रण संकट में अकेला छोड़कर मैं किस प्रकार लौट आया?' ऐसा कहते-कहते राम मूर्च्छित होकर पुनः गिर पड़े। उस समय उनके दुःख से दुःखी होकर पशु-पक्षी भी रोने लगे और उस महावीर की ओर देखने लगे।

लक्ष्मण बोले, 'आर्य, यह आप क्या कह रहे हैं? यह रहा आपका अनुज लक्ष्मण जो कि समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर आपके पास लौट आया है। लक्ष्मण की बात सुनकर अमृत सींचन से जिस प्रकार मरणासन्न की चेतना लौट आती है उसी भाँति राम की चेतना लौटी। उन्होंने नेत्र खोले। लक्ष्मण को सामने खड़े देखकर उन्हें आलिंगन में ले लिया। लक्ष्मण अश्रु प्रवाहित करते हुए बोले, 'हे आर्य, जानकी का हरण करने के लिए ही किसी ने सिंह-नाद किया था किन्तु कोई चिन्ता नहीं, मैं उस दुष्ट के प्राणों सहित जानकी को लौटा लाऊँगा। अतः चलिए हम उन्हें खोजने का प्रयास करें। किन्तु उसके पूर्व इस विराध को उसका पाताल लंका का राज्य लौटा देना होगा। कारण युद्ध करने के समय मैंने इसे यह वचन दिया था।'

उन्हें प्रसन्न करने के लिए विराध ने उसी समय सीता की खोज में चारों ओर विद्याधर योद्धाओं को भेजा। उनके लौट आने तक क्रोधाग्नि में प्रज्वलित होते हुए भी बार-बार निःश्वास फेंकते हुए और ओष्ठ दंशन करते हुए राम और लक्ष्मण उसी वन में अवस्थित रहे।

विराध द्वारा भेजे हुए विद्याधर बहुत दूर तक गए किन्तु उन्हें सीता का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ अतः वे लौटकर सिर झुकाए राम के सम्मुख खड़े हो गए।

उन्हें नत मस्तक देखकर राम बोले, 'हे योद्धागण, स्वामी के कार्य को सम्पादन करने में तुमलोगों ने यथाशक्ति प्रयास किया है। किन्तु सीता को नहीं खोज सके, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। जब दैव ही विमुख है तब तुम या अन्य कोई क्या कर सकता है?'

विराध बोला, 'प्रभु, आप खेद न करें कारण खेद नहीं करना ही लक्ष्मी का कारण है। आपकी सेवा करने के लिए आपका यह सेवक उपस्थित है। अतः मुझे पाताल लंका में प्रवेश करवाने के लिए आपलोग आज ही चलें। वहाँ से सीता सन्धान सहजता से हो सकेगा।' तब राम-लक्ष्मण विराध और उसके सैन्यदल के साथ पाताल लंका में गए। वहाँ शत्रुहन्ता खर का पुत्र सुन्द वृहद् सेना लेकर युद्ध करने के लिए आया। बहुत देर तक वह विरोधी विराध के साथ युद्ध करता रहा। तदुपरान्त लक्ष्मण को युद्ध करने आते देखकर चन्द्रनखा के कथन पर वह युद्ध का परित्याग कर लंका में रावण की शरण में चला गया। राम और लक्ष्मण ने पाताल लंका में प्रवेश कर विराध को उसके पितृ सिंहासन पर बैठाया। तदुपरान्त राम और लक्ष्मण खर के प्रासाद में और विराध युवराज की भाँति सुन्द के प्रासाद में रहने लगा।

इधर सुग्रीव की पत्नी तारा का अभिलाषी सहसगति जो कि बहुत दिनों से हिमालय की गुफा में विद्या साधना कर रहा था उसको प्रतारिणी विद्या सिद्ध हो गयी। उसी विद्या के द्वारा कामरूपी देवों की तरह इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ उसने सुग्रीव का रूप धारण कर आकाश में मानो द्वितीय सूर्य उदय हुआ हो इस प्रकार किष्किन्धा नगर में गया। सुग्रीव जब विनोदन के लिए, बाहर उद्यान में गया उसी समय उसने प्रासाद में प्रवेश किया। थोड़ी देर में ही जब सुग्रीव लौटा तो द्वारपालों ने उसे रोका। बोला, 'राजा सुग्रीव अभी भीतर हैं।'

एक जैसे दो सुग्रीव देखकर बालिपुत्र चन्द्ररश्मि के मन में कुछ सन्देह

हुआ। अतः अन्तःपुर में कोई अघटित घटित न हो जाए उन्होंने अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहाँ जाकर उसने उसी प्रकार छद्मवेशी सुग्रीव को तारादेवी के कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व ही रोक दिया जिस प्रकार पर्वत नदी-प्रवाह को रोक देता है।

तब संसार के समस्त सत्व की तरह सब जगह से चौदह अक्षौहिणी सेना एकत्रित की गई। किन्तु वे भी सच्चे और झूठे सुग्रीव का पता नहीं लगा सके। अतः दो भागों में विभक्त होकर अपने-अपने पक्ष को ले लिया।

तदुपरान्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। भालाओं के आघात से अग्नि स्फुलिंग इस प्रकार निकलने लगे कि लगा आकाश में उल्कापात हो रहा है। वाहन के साथ वाहन, आरोही के साथ आरोही, रथी के साथ रथी, पदातिक से पदातिक युद्ध करने लगे। प्रौढ़ पति के समागम से मुग्धा स्त्री जिस प्रकार कम्पित होती है। उसी प्रकार चतुरंगिनी सेना के विमर्दन से पृथ्वी कम्पित होने लगी। तब सच्चे सुग्रीव ने मस्तक उठाकर छद्मवेशी सुग्रीव को आह्वान कर कहा 'ओ अन्य के घर में प्रवेश करने वाले लम्पट, सामने आ।' उसका आह्वान सुनकर तिरस्कृत हाथी की तरह छद्मवेशी सुग्रीव उग्र गर्जन करते-करते उसके सामने आया।

क्रोध से लाल आँख किए यमराज के सहोदर की तरह जगत को त्रासित करते हुए वे दोनों युद्ध करने लगे। दोनों ही रण कुशल तो थे ही अतः एक दूसरे के शस्त्रों को अपने अस्त्र से तृण की भाँति छिन्न करने लगे। दो भैंसों की लड़ाई में जैसे वृक्ष के टुकड़े उड़ते हैं उसी प्रकार उन दोनों के युद्ध में शस्त्रों के टुकड़े आकाश में उड़ने लगे। उनको देखकर आकाश की खेचरियाँ भयभीत होने लगीं। क्रोधियों के शिरोमणि दोनों के अस्त्र जब निःशेष हो गए, तब दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। उन्हें देखकर लगता था जैसे दो पर्वत युद्ध कर रहे हों। क्षण में आकाश में उड़ते और क्षण में धरती पर गिरते वे दोनों दो मुर्गों की तरह लग रहे थे। दोनों समान वीर होने के कारण कोई किसी को पराजित नहीं कर सका। अन्ततः क्लान्त होकर वे दोनों दो बलद की भाँति दूर जाकर खड़े हो गए।

सच्चे सुग्रीव ने तब सहायता के लिए हनुमान को पुकारा और फिर से छद्मवेशी सुग्रीव के साथ युद्ध करने लगा। किन्तु हनुमान भी कौन असली कौन नकली समझ न पा सकने के कारण चुपचाप खड़े ही रहे और उसी बीच नकली सुग्रीव ने असली सुग्रीव पर खूब जोर से प्रहार किया। इस प्रकार

सुग्रीव देह और मन से खिन्न होकर किष्किन्धा त्यागकर अन्यत्र चले गए। अतः नकली सुग्रीव विभ्रान्त मन लिए वहीं रहने लगा। किन्तु बालि-पुत्र के भय से वह अन्तःपुर में प्रवेश न कर सका।

तब असली सुग्रीव मस्तक नीचा किए सोचने लगा—'मेरी पत्नी पर आसक्त शत्रु कूटकपट में अत्यन्त चतुर है। तभी तो मेरे अपने अनुचर भी इसके वश में हो गये हैं। यह अपने ही अश्व के द्वारा पराभूत होने की तरह है। माया में शक्तिमान अपने इस शत्रु की मैं कैसे हत्या करूँ? पराक्रम में हीन और बाली के नाम को लज्जित करनेवाले मुझ कापुरुष को धिक्कार है। महा-बलवान बाली ही धन्य है जिसने पुरुष व्रत को अखण्ड रख तृण की तरह राज्य परित्याग कर मोक्ष गमन किया।

'बालिपुत्र युवराज चन्द्ररश्मि इस समय समस्त संसार में महा बलवान है। किन्तु वह क्या कर सकता है? कौन असली कौन नकली यह समझे बिना वह किसकी सहायता करे किसे मारे। किन्तु उसने यह ठीक किया कि छद्म-वेषी को अन्तःपुर में प्रविष्ट होने नहीं दिया। अब उस बलिष्ठ शत्रु को मारने के लिए किसी सबल पुरुष का आश्रय लेना उचित है। कारण स्वयं के हाथों हो या अन्य के द्वारा शत्रु का वध तो होना ही उचित है। इस शत्रु को मारने के लिए तब क्या मैं तीनों लोकों के वीरशिरोमणि मरूत के यज्ञ को नष्ट करने वाले रावण की शरण लूँ? किन्तु रावण तो स्वयं ही प्रकृति से लम्पट और जगत के लिए कंटक है। वह तो मुझे और उसे दोनों को ही मारकर तारा को ग्रहण कर लेगा। ऐसी स्थिति में उग्र बलवान खर राक्षस मेरी सहायता कर सकता था किन्तु राम ने उसका वध कर दिया। अतः अब यही उचित है कि मैं पाताल लंका में जाकर राम और लक्ष्मण से मित्रता करूँ। कारण शरणागत विराध को उन्होंने तत्काल ही पाताल लंका का राज्य दे दिया और अभी वे पराक्रमी विराध के आग्रह पर वहीं अवस्थित हैं।'

ऐसा सोचकर सुग्रीव ने अपने एक विश्वासपात्र दूत को एकान्त में बुलाकर सब कुछ समझाया और विराध के पास भेज दिया। दूत ने पाताल लंका में जाकर विराध को प्रणाम किया और अपने स्वामी का समस्त कष्ट निवेदित कर बोला, 'मेरे प्रभु सुग्रीव इस समय महान् विपत्ति में हैं एतदर्थ आपके माध्यम से वे राम-लक्ष्मण की शरण में जाना चाहते हैं।' सुनकर विराध ने कहा, 'दूत तुम शीघ्र जाकर सुग्रीव से कहो कि वे तुरन्त यहाँ चले आएँ। क्योंकि सत्पुरुषों का संग तो पुण्य से ही प्राप्त होता है।' दूत ने शीघ्र

जाकर सुग्रीव को विराध की बात सुनायी। तब सुग्रीव अपने अश्व के गले के रत्नहार से दिग् समूह को गुँजित करता हुआ तीव्र वेग से दूरी को अदूरी में परिवर्तित कर क्षणमात्र में वहाँ इस प्रकार पहुँचा मानो एक घर से निकलकर दूसरे घर में गया हो।

विराध ने सहर्ष उसका स्वागत किया तदुपरान्त सुग्रीव को लेकर राम के निकट गया। सुग्रीव ने राम को प्रणाम किया। विराध ने तब सुग्रीव की समस्त कथा राम को कह सुनायी। सुग्रीव बोले, 'हे प्रभु, जैसे छींक बन्द हो जाने से सूर्य ही एक मात्र गति है, उसी प्रकार आप ही मेरे लिए गति और शरण हैं।' राम स्वयं स्त्री वियोग से पीड़ित थे फिर भी सुग्रीव का दुःख दूर करने को सहमत हो गए। महापुरुष अपने कार्य से भी अन्य के कार्य करने में अधिक प्रयत्नवान होते हैं।

तदुपरान्त विराध ने सीता हरण का सारा वृतान्त सुग्रीव को सुनाया। सुनकर सुग्रीव करबद्ध होकर बोला, 'हे देव, विश्व की रक्षा करने में समर्थ आपको और जगत को प्रकाशित करनेवाले सूर्य को किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं होती फिर भी मैं निवेदन करता हूँ आपकी कृपा से मेरे शत्रु के विनष्ट हो जाने पर मैं सैन्य सहित आपका अनुचर बनकर अल्प समय में ही सीता का संवाद ले आऊँगा।

तब राम सुग्रीव सहित किष्किधा गए। विराध ने भी उनके साथ जाना चाहा किन्तु राम ने उसे समझाकर रोक दिया। राम किष्किधा में प्रवेश न कर द्वार के निकट ही अवस्थित हो गये। तदुपरान्त असली सुग्रीव ने नकली सुग्रीव को युद्ध के लिए आह्वान किया। वह उसी समय गर्जन करता हुआ बाहर निकला। भोजन करने में ब्राह्मण जिस प्रकार आलस नहीं करते उसी प्रकार वीर भी युद्ध में आलस नहीं करते। दुर्द्धर चरणों की चोट से पृथ्वी को आहत करते हुए वे दोनों वीर अरण्य के उन्मत्त हस्ती की तरह युद्ध करने लगे। राम दोनों को एक रूप देखकर स्व-सुग्रीव और दूसरे सुग्रीव को नहीं पहचानने के कारण संशयान्वित होकर तटस्थ बने खड़े रहे। तदुपरांत 'प्रथम यह करना उचित है' समझकर वज्रावर्त्त धनुष पर टंकार किया। उस टंकार से साहसगति को रूपान्तर करनेवाली विद्या उसी क्षण हरिणी की भाँति भाग गयी। साहसगति स्व-रूप में आ गया। तब राम ने उसका तिरस्कार किया और बोले, 'ओ पापी, माया से सबको मुग्ध कर तू परस्त्री को भोगना चाहता था? अब धनुष उठा'—ऐसा कहते हुए एक ही बाण से उसे मार

डाला। हरिण को मारने के लिए सिंह को दूसरा थप्पड़ मारने की आवश्यकता नहीं होती। तदुपरान्त विराध की तरह राम ने सुग्रीव को भी सिंहासन पर बैठाया। पुरजन और अनुचरगण पूर्व की भाँति ही उसकी सेवा करने लगे।

सुग्रीव ने हाथ जोड़कर अपनी तेरह कन्याओं के साथ विवाह करने के लिए राम से अनुरोध किया। प्रत्युत्तर में राम ने कहा, 'सुग्रीव, उन कन्याओं की या किसी भी अन्य वस्तु की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर राम बाहर उद्यान में चले गये। सुग्रीव ने राम की आज्ञा से नगर में प्रवेश किया।

उधर लंका में मन्दोदरी आदि रावण की रानियाँ खरदूषण आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर रोने लगी। रावण की बहिन चन्द्रनखा भी दोनों हाथों से छाती पीटती हुयी सुन्द को संग लेकर रावण के पास गयी। रावण को देखकर उसका गला पकड़कर उच्च स्वर से रोती हुयी बोलने लगी, 'अरे देवों द्वारा मैं मारी गयी। मेरा पुत्र, मेरा पति, मेरा देवर और चौदह हजार योद्धा सभी मारे गये। भाई तुम्हारे जीवित रहते अभिमानी शत्रुओं ने तुम्हारी दी हुयी पाताल लंका हमसे छीन ली। इसलिए पुत्र सुन्द को लेकर प्राणरक्षा के लिए तुम्हारे पास आयी हूँ। तुम्हीं बताओ अब मैं कहाँ जाकर रहूँ?'

तब रावण उसे सान्त्वना देते हुए कहा, 'तुम्हारे पुत्र और पति की हत्या करने वाले को मैं शीघ्र ही मार डालूँगा।' रावण इस शोक और सीता की विरह वेदना में शिकारभ्रष्ट बाघ की तरह आर्त होकर बिछौने में लोट रहा था। उसी समय मन्दोदरी ने आकर उससे कहा, 'हे नाथ, साधारण मनुष्य की भाँति, निश्चेष्ट होकर आप कैसे सोए हुए हैं? तब रावण बोला, 'सीता की विरह वेदना में इतना आकुल हो गया हूँ कि मुझ में किसी भी प्रकार की चेष्टा करने की, यहाँ तक बोलने देखने की भी सामर्थ्य नहीं है। अतः हे मानिनी, तुम यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो तो अभिमान त्याग कर सीता के निकट जाओ और उसे शान्तभाव से समझाने की चेष्टा करो ताकि वह मेरे साथ सुख भोगने के लिए सम्मत हो जाए। मैंने गुरु साक्षी में नियम लिया था कि अनिच्छुक परस्त्री का भोग मैं नहीं करूँगा? वही नियम आज मेरे सन्मुख अर्गला के रूप में उपस्थित हो गया है।'

[क्रमशः

संकलन

प्रतिमा-पूजन सही अर्थों में एक वैज्ञानिक और बुद्धिसंगत पद्धति है। असीमता का वैज्ञानिक सत्य सीमाओं में ही ग्राह्य बन सकता है। किसी भी पदार्थ को ग्रहण करने की यही उपयुक्त प्रणाली है। विद्युत शक्ति का उपयोग करते हुए केवल इतना ही ध्यान रखना यथेष्ट नहीं है कि विद्युत केन्द्र में कितनी क्षमता है। व्यक्ति को अपनी सीमाओं का भी परिज्ञान होता है और तब वह अपनी आवश्यकता के अनुकूल बल्ब के माध्यम से प्रकाश ग्रहण कर लेता है। ससीम उपलब्धि से वस्तु की सीमाओं का निर्धारण नहीं किया जा सकता। अपरिच्छिन्नता का सत्य परिच्छिन्न होकर ही लोक-कल्याण का हेतु बन पाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने शयन कक्ष में सीमित क्षमता वाले बल्ब का प्रयोग इसलिए न करे कि इससे तो प्रकाश अल्प और परिच्छिन्न सिद्ध हो जाएगा, तब असीमता का ऐसा आग्रह उसे अन्धकार में ही रहने को बाध्य करा देगा। प्रतिमा में असीम ब्रह्म की उपस्थिति व्यक्ति की सीमाओं का ही स्मरण दिलाती है, न कि परिच्छिन्नता का।

अछूते सन्दर्भ ॥ दिसम्बर १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

प्राकृत विद्या ।। अप्रैल-सितम्बर १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'सदाचार का साधन धर्म' (आचार्य श्री विद्यानन्द), 'धर्म आत्मा का निजी स्वरूप' (आचार्य श्री नानेश), 'सत्य की डगर पर शान्ति के पांव' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'पर्युषण : आत्म-जागरण का पर्व' (स्व० आचार्य श्री हस्तीमल), 'धर्म और नीति के दायरे' (स्व० श्री अमर मुनि), 'धरम का लाभ सर्वोत्तम लाभ' (साध्वी मणिप्रभा), 'संशय के पार सत्य' (महो० चन्द्रप्रभसागर), 'धर्म के दस द्वार' (दुलीचंद जैन), 'बहुआयामी धर्म' (पं० रमेशचन्द्र जैन वांझल), 'धर्म की राह : भेद विज्ञान' (पं० पन्नालाल जैन), 'आत्म स्वभाव की उपलब्धि है धर्म' (डा० दयानन्द भार्गव), 'सुख का मूल : संतोष' (नीरज जैन), 'प्राकृत भाषाओं में ण्य, न्न, न्य और र्ण के ध्वन्यात्मक परिवर्तन' (डा० के० आर० चन्द्र), 'प्राकृत के मनीषियों से' (डॉ० जगदीशचन्द्र जैन), 'आयुर्वेद का प्राकृत ग्रन्थ जोणि-पाहुड' (डा० उदयचन्द्र जैन), 'राजस्थान में प्राकृत-अपभ्रंश के शोध की सम्भावनाएँ' (डा० प्रेम सुमन जैन), 'प्राकृत का प्राचीनतम ग्रन्थ—इसिभासियाइं' (डा० ईश्वर दयाल)।

शोधादर्श ।। नवम्बर १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'श्रमण संस्कृति की प्राचीनता' (स्व० डा० ज्योतिप्रसाद जैन), 'जैन एवं बौद्ध दर्शनों में आत्मवाद' (डा० विजय कुमार), 'जैन पुराणों में लोक सम्बन्धी अवधारणा' (डा० सुनीता कुमारी), 'गुजरात में आचार्य कुन्दकुन्द की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ' (डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'), 'ग्वालियर अंचल की जैन पुरासम्पदा' (अभय प्रकाश जैन), 'जैन आचार पद्धति में अचौर्य एवं अपरिग्रह अणुव्रत की अवधारणा' (डा० राजदेव दूबे), 'भगवान महावीर और उनका जीवन दर्शन' (डा० शशिकान्त), 'स्वास्थ्य व आध्यात्मिकता का पारस्परिक सम्बन्ध' (आशा सहारिया), 'जैन साहित्य के महाविद्वान हरमन जैकोबी' (डा० रानी मजुमदार), 'मगधराज कुणिक अजातशत्रु' (सुधा जिन्दल)।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१.	अतिमुक्त (२य संस्करण)—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	८.००
२.	श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	३.००
३.	नीलांजना—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	१२.००
४.	चन्दन मूर्त्ति—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	२०.००
५.	चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया	५.००
६.	भगवान महावीर (एलबम्)	१०.००

বাংলা

১.	অতিমুক্ত —শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৪.০০
২.	শ্রমণ সংস্কৃতির কবিতা —শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৩.০০
৩.	ভগবান মহাবীর ও জৈন ধর্ম —শ্রীপূরণচাঁদ শ্যামসুখা	২.০০

English

1.	Bhagavati Sutra (Text with English Translation) —Sri K. C. Lalwani	
	Vol. I (Satak 1-2)	40.00
	Vol. II (Satak 3-6)	40.00
	Vol. III (Satak 7-8)	50.00
	Vol. IV (Satak 9-11)	70.00
2.	The Temples of Satrunjaya —James Burgess	50.00
3.	Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha tr. by Sri Ganesh Lalwani	1.50
4.	Thus Sayeth Our Lord —Sri Ganesh Lalwani	1.50
5.	Verses from Cidananda—tr. by Sri Ganesh Lalwani	5.00

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :

Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVI No. 9 TITTHAYARA January 1993
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77